ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-10* January-2021
Anthology : The Research

मेवाड़ के शासकों का सांस्कृतिक इतिहास वीर रस के संदर्भ में

Cultural History of Rulers of Mewar with Reference to Heroic Sentiments Style

Paper Submission: 15/01/2020, Date of Acceptance: 26/01/2020, Date of Publication: 27/01/2021

संगीता भाटी
शोध छात्रा
चित्रकला विभाग,
राज. महाविद्यालय
टोंक राज. भारत

रामावतार मीना
सह प्राध्यापक,
चित्रकला विभाग,
राज. महाविद्यालय
टोंक राज. भारत

सारांश

रायकृष्णदास ने राजस्थानी चित्रकला का उदभव पन्द्रहवी सदी में मेवाड़ में कश्मीर शैली के मिश्रण से बताया है। इससे मेवाड़ की चित्रकला अपने स्थानीय विशेषताओं से शुद्ध हिन्दू परम्परा में थी, इसकी पुष्टि होती है। प्राचीन मध्यकालीन पश्चिमी भारतीय षैली के रुपों एवं अभिप्रायों में आदान–प्रदान से उत्तर पश्चिम भारत के विभिन्न शासकों का कला प्रेम बढ़ा व सभी राजघराने में चित्र बने, जिसे राजस्थानी चित्रकला के नाम से सम्बोधित किया गया। मेवाड़ की चित्रकला इतिहास का प्रथम ग्रन्थ ''श्रावक प्रतिक्रमण सूत्रचूर्ठी' तथा द्वितीय सचित्र ग्रन्थ ''कल्पसूत्र'' तृतीय ''सुपासनाह चरियम्'' चौथा सचित्र ग्रन्थ ''ज्ञानार्णव'' पांचवा सचित्र ग्रन्थ ''रसिकाष्टक'' है। मेवाड़ में देलवाड़ा का कला व सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा महत्व रहा है। मॉडू के स्वर्ण कल्पसूत्र की प्रशस्ति अनुसार श्रेष्ठी असहर जब मेवाड़ में आया तो महाराणा कुम्भा ने उसे तिलक लगाकर सम्मानित किया था। महाराणा लाखा, मोकल एवं कुम्भा से लेकर उदयसिंह तक का शासक काल मेवाड़ का ही नहीं अपितु पूरे राजस्थान का महत्वपूर्ण काल रहा है। राजस्थान में आर्य एवं अनार्य बस्तियाँ साथ–साथ बनी रही और वहाँ के निवासी एक दूसरे के अधिक समीप रहे। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार उत्तर–पश्चिमी राजस्थान में भरत और मत्स्य शाखा के आर्य बसते थे। यहीं सरस्वती के तट पर द्वैतनवन नामी पराक्रमी मत्स्यराज ने चवदह अष्वमेघ यज्ञ सम्पादित किये थे।

Rai Krishnadas has described the origin of Rajasthani painting in the 15th century with a mixture of Kashmir style in Mewar. This confirms the painting of Mewar from its local characteristics in pure Hindu tradition. Through the exchange of froms and intentions of ancient medieval western Indian style the love of art of the various rulers of northwestern India was bigger and meant to be picture in all the royal houses. Which was referred to as Rajasthani Painting? The first treatise of Mewar's painting history is the "SHRAWAK PRATIKARMA SUTRA CHURNI" and the second treatise "KALPSUTRA" third was "SUPASNAH CHARIYAM", fourth illustrated scipture text "GAYANARNAV", fifth illustrated text was "RASIKASTAK".

Dalwara has been of great importance in cultural terms and art in mewar. According to the citation of the golden kalpasutra of Mandu. When the shres thiashar came to Mewar. Maharana Kumbha honored him with a tilak. The rule from Maharana Lakha Mokal Kumha to Uday Singh is not only of mewar but the entire Rajasthan has been an important period. Arya and anarya settlements in Rajasthan remained together and the residents there remained more close to each other. According to shatpath brahmin Arya of bharata and matsya branch settled in north western rajasthan. On the banks of saraswati river a power ful ruler named DAITWAN of Matasya clan performed fourteen ashwamedh yagya.

मुख्य शब्द : ग्रन्थ, शासक, केन्द्र, चित्रकार, शैली, आक्रमण, सांस्कृतिक धरोहर, इतिहास, शक्ति, पराक्रम, युद्ध
Texts, ruler, center, painter, style, Attack, cultural heritage, History, Power, might, war

प्रस्तावना

मेवाड़ नरेशों के अराध्य देव शिव–पार्वती भगवान एक लिंगजी रहे है, परिणाम स्वरुप समूचे मेदपाट देश में शिव–शक्ति के मन्दिरों का जाल बिछ गया। छोटी सादड़ी (भंवर माता) कल्याणपुर, एकलिंगजी, डबोक, घौड़, चित्तौड़, आहड़, जहाजपुर, ऊनवास, बाडोली आदि उस गौरवपूर्ण कला परम्परा के महत्वपूर्ण केन्द्र है। पृष्ठभूमि में चित्रकला के उद्भव एवं विकास की मेवाड़ भूखण्ड में अनुकूल परिस्थितियाँ बन गई। मेवाड़ की चित्रकला इतिहास का प्रथम ग्रन्थ 'श्रावक प्रतिक्रमण सूत्रचूणि' ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में चित्र के दायें बायें लिपि तथा मध्य भाग में चित्र बने हैं। इस प्रकार मेवाड़ की चित्रकला का दूसरा सचित्र ग्रन्थ 'कल्पसूत्र' वि.स. 1475 (1418 ई.) है, जो सोमेष्वर ग्राम गोडवाड़ में अंकित किया गया। यह ग्रन्थ अनूप संस्कृत लाईब्रेरी, बीकानेरी में सुरक्षित है। 79 पत्रों की इस प्रति में 73 पत्रों तक तो कल्पसूत्र एवं कालिका चार्य कथा 88 ष्लाकों की है। इस कथा में 3 चित्र हैं। कल्पसूत्र के 16 पृष्ठों पर चित्र हैं। इनमें से पत्रांक 9 और और 32 बोर्डर पर भी लघु चित्र हैं। पत्रांक 26 में दो चित्र हैं। चित्रों की पृष्ठभूमि लाल हल्दिया बैंगनी, मूंगे रंग का प्रयोग है तथा ग्रन्थ के अन्त में लिखी पुष्पिका से तत्कालीन कला परम्परा की भी उचित पुष्टि होती है। मेवाड़ की चित्रकला का तीसरा सचित्र ग्रन्थ महाराणा मोकल के राज्यकाल (1421–1433 ई.) का देलवाड़ा में चित्रित सुपासनाह चरियम् वि.सं. 1480 है। यह ग्रन्थ सैंतीस चित्रों का एक अनुपम चित्र सम्पुट है। जो ज्ञान भण्डार पाटण के संग्रहालय में सुरक्षित है। यह ग्रन्थ देलवाड़ा में मुनि हीरानन्द द्वारा अंकित किया गया, मुनि श्री हीरानन्द द्वारा चित्रित यह ग्रन्थ मेवाड़ की चित्रण परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जो इससे पूर्व श्रावक प्रतिक्रमण सूत्रचूर्णि की कलात्मक विशेषताओं से एक कदम आगे है। देलवाड़ा में ही महाराणा मोकल के राज्यकाल का अन्य चौथा सचित्र ग्रन्थ 'ज्ञानार्णव' वि.सं. 1485 (1427 ई.) नेमीनाथ मन्दिर में लिखा गया दिगम्बर जैन ग्रन्थ है। यह लालभाई दलपत भाई ज्ञान भण्डार अहमदाबाद में सुरक्षित है। इस भूखण्ड का पांचवा सचित्र ग्रन्थ 'रसिकाष्टक' वि.सं. 1492 है जो महाराणा कुम्भा के राज्यकाल (1433–1438) का उल्लेखनीय ग्रन्थ है। 'रसिकाष्टक' नामक यह ग्रन्थ भीखम द्वारा अंकित किया गया था जो पुष्पिका में भी स्पष्ट है। इस ग्रन्थ के छः श्रेष्ठ चित्र उपलब्ध हुए है जिनमें विभिन्न ऋतुओं तथा पशुओं के गतिपूर्ण अंकन है जो तात्कालीन कला परम्परा की अच्छी पुष्टि करते हैं। अगरचन्द्र नाहटा संग्रह बीकानेर में सुरक्षित है। महाराणा लाखा, मोकल एवं कुम्भा से लेकर उदयसिंह तक शासक काल मेवाड़ का नहीं अपितु पूरे राजस्थान का महत्वपूर्ण काल रहा है।[1]

मेव जाति के विकास तथा इस क्षेत्र में निवास करने के कारण इेस 'मेवाड़' कहा जाता है। जगतसिंह, भीमसिंह, संग्रामसिंह, राणा कुम्भा, राणा सांगा, राजसिंह आदि रसिकों का कलाकारों को राज्याश्रय मिला। साहबदीन, भैरूसिंह, नैनसुख, कृपाराम, मनोहर, निसारदीन और वेवगढ़ के चौखा व बख्ता उत्पादक रहे।

जगत, तनेसर, केजड़, अमझेरा, झाड़ोल आदि स्थानों से प्राप्त गुप्तोत्तर कालीन मूर्तिकला मेवाड़ के सांस्कृतिक व कलात्मक स्तर को दर्षाती है। दक्षिणी–पश्चिमी राजस्थान के 8वीं सदी के कई प्राचीन ग्रन्थों में चित्रण–विषय पर प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। जिसमें समराईच्चकहा, कुवलयमाला कहा, उपमितिभवव्रपंच कथा व धूर्ताख्यान आदि ग्रन्थ दृष्टव्य हैं। हेमचन्द कृत 'ओधर्निर्युक्तिवृति' को अजन्ता शैली का चित्रण परम्परा के साथ ही मेवाड़ भू–क्षेत्र में प्रतिहार कालीन कला का अन्तिम स्वरुप माना गया। इस ग्रन्थ के चित्रों में पष्चिमी भारतीय शैली के स्पष्ट प्रभाव दिखाई देते हैं।

चौदहवीं शताब्दी में कागज के आविष्कार और चित्रांकन में उसके उपयोग के साथ मेवाड़ शैली में और भी निखार आया। फलतः मेवाड़ के कलाकार चित्रों में परिसज्जा पर अधिक बल देने लगे। इस शैली के चित्र, कलाकार के परिश्रम तथा हस्तताधव को प्रदर्षित करने की वृत्ति के रूझान पर उसकी आन्तरिक चेष्ठा की स्वाभाविक अभिव्यक्ति को उद्घाटित करते हैं जिसमें लौकिक वैशिष्ट्य स्पष्ट झलकता है।

महाराणा सांगा (1509–1527 ई.) के राज्यकाल में बने चित्र 'उखल–बन्धन', 'स्वर्ण से परिजात वृक्ष को पृथ्वी पर लाना' मेवाड़ की चित्रण परम्परा के श्रेष्ठ सोपान हैं। सोलहवीं शताब्दी में रचा गया'चौर पंचशिखा' नामक चित्रित ग्रन्थ है। यह संप्रति श्री एन.सी. मेहता के संग्रह में है।[2]

नाथद्वारा शैली के अतिरिक्त राजपूत शैली के अन्तर्गत जितनी भी शैलियाँ आती हैं, उन सभी में भक्तिकालीन और रीतिकालीन चित्रण हुआ है। मेवाड़ उस समय एक शक्तिशाली हिन्दू राज्य था और भारतीय संस्कृति का रक्षक था। अतः शासकों ने सांस्कृतिक धरोहर के रुप में विशेषकर चित्रकला को बहुत ही संरक्षण दिया। राजस्थान चितेरों ने काव्य के समानान्तरण ही सहज और लाक्षणिक चित्रण किया है। काव्य चित्रण के लिए ही चितेरों ने अनुकूल शैलियों का आविष्कार किया। राजस्थानी चितेरों ने तूलिका प्रयोग बहुत कुछ लेखनी के समान किया है। उस समय के चित्र निर्धारित व्याकरण की सीमाओं में बंधे होने के कारण एक विशेष परम्परा में आते हैं, जो शुद्ध भारतीय हैं। इन शैलियों को 'कलम भी कहा जाता है। जैसे– पहाड़ी कलम, राजपूती कलम आदि। राजस्थानी कलाएँ अधिक विकसित और सूक्ष्म थी। एक और धर्म–भावना से ओत–प्रोत थी, वहीं दूसरी और शुद्ध कलात्मक भी थी। यही कारण है कि विदेषी आक्रमणों से ये अपनी रक्षा कर सकी।[3]

राजस्थान में आर्य एवं अनार्य बस्तियाँ साथ–साथ बनी रही और वहाँ के निवासी एक दूसरे के अधिक समीप रहे। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार उत्तर–पश्चिमी राजस्थान में भरत और मत्स्य शाखा के आर्य बसते थे। यहीं सरस्वती के तट पर द्वैतवन नामी पराक्रमी मत्स्यराज ने, चौदह अश्वमेघ यज्ञ सम्पादित किये थे।[4] वैसे तो राजस्थान के अनार्यों और आर्यी की सभ्यता और संस्कृति का भेदकाल, स्थान एवं मान्यता के विचार से स्पष्ट था। इनकी सभ्यता दीर्घकालीन इतिहास का सूचक है। इतना अवष्य था कि जो आर्य यहाँ आए, उनमें

एक जोष और उत्साह था और उन्हें अपनी शक्ति और संस्कृति के प्रसार के प्रति ममता थी। ग्राम्य सभ्यता के प्रतीक आर्यो ने अनार्य नागरिक सभ्यता के मानवों से नगर नियोजन की व्यवस्था को सीखा जो आगे चलकर इनके बड़े–बड़े नगरों के बनने से स्पष्ट है। इस प्रकार भारतीय आर्य संस्कृति और राजस्थान की आदि संस्कृति का संस्पर्ष और प्रसार अज्ञात युग की सांस्कृतिक कड़ियों को जोड़ने की दृष्टि से महत्व के हैं।[5]

राजस्थान में भी आर्य बस्तियों के उदय के साथ–साथ जनपदों के विस्तार का श्रीगणेष होता है। वैदिक युग के आर्य राज्यों को, जिनका आधार जन होता था, जन–पद कहते थे, प्रारम्भ में जब इनका आकार छोटी इकाई के रुप में होता था तब प्रायः सभी जन 'सजात' समुदाय से बनते थे। ज्यों–ज्यों इनकी सीमाएँ बढ़ती गई और वे शक्तिशाली होते गये इनमें अन्य वर्ग भी सम्मिलित हो गए और उनमें सीमा या अन्य विवादों को लेकर परस्पर संघर्ष भी शुरू हो गये। इन संघर्षों के कारण गुट बनने लगे। एक जन से दूसरे जन सम्मिलित हो जाते थे। अथवा शक्तिशाली जनपद समीपवर्ती जनपदों पर अधिकार कर लेते थे। ऐसी परिस्थिति ने गणराज्यों और महा जनपदों को जन्म दिया। बौद्ध साहित्य में जगह–जगह जिन सौलह महा जनपदों का उल्लेख आता है उसमें राजस्थान के भी विभिन्न भाग कुरु, मत्स्य शूरसेन और अवन्ति महा जनपद के अन्तर्गत है।[6] 327 ई.पू. सिकन्दर के आक्रमण के कारण पंजाब के कई जनों ने उसकी सेना का सामना किया। अपनी सुरक्षा और व्यक्तित्व को बनाये रखने के लिए ये कई कबीले राजस्थान की ओर बढ़े जिनमें मालव, शिबी, अर्जुनायन, योधेय आदि मुख्य थे। आगे चलकर टोंक, अजमेर और मेवाड़ पर भी उन्होंने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। ये राजस्थान में 130 ई.पू. 400 ई. तक एक स्वतन्त्र शक्ति के रुप में बने रहे, जो यहाँ मिलने वाले सिक्के तथा थूप–स्तंभों से प्रमाणित है।[7]

गुहिलवंशी शासकः– गुहिल शासकों में सर्वप्रथम शिलादित्य के राज्याश्रय में श्रृंगधर का उल्लेख मिला है।

शिलादित्य के राज्यकाल में 'अरण्यवासिनी देवी' का मन्दिर बना। शिलादित्य के पुत्र 'अपराजित' के कुण्ड़ा ग्राम के शिलालेख सं. 718 (661 ई.) में भी सौन्दर्य की उत्कृष्ट कल्पना की है। जिनमें स्पष्ट होता है कि मेवाड़ के प्रारम्भिक गुर्हिल शासक कलाप्रेमी थे। इन्होंने आहड़, नागदा, एकलिंगजी, सामोली, कल्याणपुर आदि क्षेत्रों में अपने राज्य का विस्तार किया। गुहिल शासकों में बप्पा रावल उल्लेखनीय रहे हैं। अरब आक्रमण के बाद उत्तरी भारत में जब प्रतिहारों का उदय हुआ था, तब चित्तौड़ और पूर्वी मेवाड़ का भाग प्रतिहार साम्राज्य का भाग बन गया था। प्रतिहारों के पतन के पष्चात् जिन राजपूत राज्यों का उदय हुआ, उनमें गुहिलोत, सोलंकी, परमार, चौहान आदि मुख्य थे। इन राजाओं ने कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मेवाड़ का राजा अल्लट (951–953 ई.) एक उल्लेखनीय शासक था। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, जगत गाँव का प्रसिद्ध मन्दिर (नागदा) सास–बहू तथा आहड़ का विष्णु मन्दिर इसी समय की महत्वपूर्ण षिल्पकृतियाँ हैं, जो मेवाड़ की कला परम्परा को उजागर करती है। चित्तौड़ में अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के कारण भंयकर बर्बादी हुई। सैकड़ों मन्दिर तोड़ दिये गये। हमीर के राज्य ग्रहण के बाद मेवाड़ में पुनः निर्माण कार्य प्रारम्भ हुये। मेवाड़ के शासक अब विषेष सम्पन्न थे। मालवा और गुजराज के सुल्तानों के उद्भव के साथ–साथ मेवाड़ के शासक भी उदीयमान हुए। इन तीनों राज्यों के मध्यषक्ति संतुलन बना रहा। महाराणा हमीर, रवेता, लाखा और मोकल तक ने केवल सांस्कृतिक चेतना का विकास, मन्दिरों का निर्माण, साहित्य सृजन आदि महत्वपूर्ण कार्य ही नहीं किए बल्कि मेवाड़ राज्य की सीमायें भी बढ़ाई गई।

महाराणा कुम्भा (1433–1468 ई.) का राज्य मेवाड़ के इतिहास में कला का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस काल में मेवाड़ शक्तिषाली साम्राज्य के रुप में विकसित हुआ। इन्होंने मंडोर, गंगरोण, बूंदी, नागौर, खाटू, चाटसू, जानागढ़, रणथम्भौर आदि को जीता कई महत्वपूर्ण स्मारक उदाहरणार्थ रणकपुर मन्दिर, कुंभलगढ़ दुर्ग कीर्तिस्तम्भ आदि का निर्माण कराया। कुम्भा के पुत्र महाराणा रायमल (1473–1509 ई.) को भी राजस्थान के प्रायः सभी राजपूत शासक अपना अगुआ मानते थे। अतः इस काल में भी कला एवं संस्कृति में मेवाड़ अपने आदर्ष प्रस्तुत करने में पीछे नहीं रहा। महाराणा की बहिन रमाबाई का निवास स्थल 'जावर' रहा, जहाँ उस काल में कई षिल्पकृतियाँ व चित्र बने। रमाबाई का एक षिलालेख वि.सं. 1554 (1434 ई.) का भी प्राप्त हुआ, जिसका सम्पादन श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल ने किया।

महाराणा सांगा का राज्यकाल (1509–1528 ई.) साहस व वीरता के लिए प्रसिद्ध रहा है। उन्होंने ग्वालियर, धौलपुर एवं बयाना प्रदेश को हस्तगत कर लिया था, इनकी महत्वपूर्ण घटनायें मालवा, गुजरात एवं दिल्ली के सुल्तानों को कई बार हराने की है। पूर्वी मालवा का भाग भी इनके राज्य में था। राजस्थान के सभी तात्कालीन शासक उनके झण्डे के नीचे खानवा के युद्ध में लड़े। महाराणा सांगा पराक्रमी वीर एवं चतुर राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने मेवाड़ की सीमाओं का विस्तार किया तथा वे एक शक्तिसम्पन्न यषस्वी शासक थे।

सांगा का उत्तराधिकारी रतनसिंह (1628–1531 ई.) बलवान शासक था। महाराणा उदयसिंह ने पष्चिमी पहाड़ियों में आहड़ के समीप उदयपुर, मेवाड़ की नई राजधानी बनाई व प्रताप ने आजादी की बागडोर सम्भाली। उसने वर्षों तक युद्ध किया और कई बार सफलता और असफलतायें प्राप्त की। उदयपुर के दक्षिण में चावण्ड़ की मेवाड़ की राजधानी बनाई तथा सीमित साधनों से मुगल बादशाह अकबर से निरन्तर संघर्ष करते रहे। इस समय भामाशाह और ताराचन्द दो उल्लेखनीय श्रेष्ठी हुये। वे लक्षाधिपति थे एवं कलाओं के पोषक भी। इस काल में ही आहड़ में ढोला मारू के चित्र बने (1592 ई)

मेवाड़ एवं मुगलों का संघर्ष बराबर चलता रहा। अमरसिंह ने भी वर्षों तक युद्ध किया किन्तु कालान्तर में उन्हें संधि करने को बाध्य होना पड़ा।

मेवाड़ और मुगल संधि (1615 ई.) के बाद में राजकुमार कर्णसिंह जहाँगीर के मुगल दरबार में गया। अतएव इनके राज्यकाल (1620–1628 ई.) में सांस्कृतिक गतिविधियों पर मुगल प्रभाव आया जिससे इस क्षेत्र के चित्रकारों को नवीन प्रेरणाऐं प्राप्त हुई व मुगल कला का कुछ प्रभाव चित्रों में अवष्य दिखाई देने लगा, किन्तु मेवाड़ की परम्परागत विषेषताऐं ज्यों की त्यों प्रचलित रही है। महाराणा राजसिंह प्रथम के राज्यकाल (1652–1680 ई.) में राजसमंद, सरबत विलास, अम्बा माता मन्दिर आदि बनाये गये। वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य ब्रज भूमि से श्रीनाथ जी की प्रतिमाओं को मेवाड़ में उनके राज्यकाल में दिनांक 5 दिसम्बर 1671 को सुरक्षा हेतु लाये। राणा जयसिंह (1680–1698 ई.) अपने पिता की भांति साहसी एवं धर्मनिष्ठ शासक थे। इनके काल में व संस्कृति का बहुत अधिक विकास हुआ तथा अनेक चित्रों का निर्माण हुआ।

मेवाड़ के महाराणा

महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय (1710–1734 ई.) ने मुगल सम्राट 'फरू' खशियर' से अच्छे सम्बन्ध स्थापित किये थे। उदयपुर में सहेलियों की बाड़ी इनके द्वारा निर्मित्त कराई गई थी।

तत्पष्चात् महाराणा जगतसिंह द्वितीय (1734–1751 ई.), महाराणा प्रतापसिंह द्वितीय (1751–1753 ई.) महाराणा राजसिंह द्वितीय (1753–1760 ई.) महाराणा अरिसिंह (1760–1773 ई.) तथा महाराणा हमीरसिंह (1773–1777 ई.) के नाम उल्लेखनीय हैं।

महाराणा सज्जसिंह का राज्यकाल (1874 से 1884 ई.) प्राचीन षिलालेखों एवं तथ्यों के आधार पर हिन्दी, फारसी और संस्कृत के विद्वानों के सहयोग से कविराजा श्यामलदास ने ''वीरविनोद'' लिखा। इसी काल में स्वामी दयानन्द उदयपुर में रहे तथा 1882 ई. में ''सत्यार्थप्रकाष'' ग्रन्थ लिखा। महाराणा फतहसिंह राज्यकाल (1884–1930 ई.) में महारानी विक्टोरिया सिल्वर जुबली समारोह के समय सज्जन निवास बाग चिड़ियाघर एवं विक्टोरिया हाल का निर्माण कार्य हुआ।

महाराणा भूपालसिंह का राज्यकाल (1930–1955 ई.) राजनैतिक परिवर्तन का युग रहा। उन्होंने कई विद्यालय एवं महाविद्यालयों की व्यवस्था की इस युग में चित्रकार रघुनाथ जी, पन्नालाल, छगनलाल, चतरभुज एवं नरोत्तम शर्मा ने विशेष ख्याति प्राप्त की तथा समसामयिक कलाधारा में चित्रकार नन्दलाल शर्मा ने राष्ट्रीय स्तर पर उल्लेखनीय कार्य किया।

महाराणा भूपालसिंह जी का राजस्थान राज्य के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रहा। कला व संस्कृति के संवर्धन एवं संरक्षण में वर्तमान महाराणा भगवतसिंह जी (1955 से अब तक) का उल्लेखनीय योगदान रहा है। मेवाड़ फाउण्डेशन के अन्तर्गत आप कला एवं संस्कृति के प्रसार में प्रति वर्ष विद्वानों को सम्मानित करते रहते हैं।

इस तरह इस भूखण्ड में पिछले 'डेढ़ हजार वर्षों से कला एवं संस्कृति की एक अक्षुण्ण परम्परा का निर्वाह देखा जा सकता है। दक्षिण–पश्चिमी राजस्थान एवं चित्तौड़गढ़ में लिखे गये 8वीं सदी के प्राचीन प्राकृत ग्रन्थों में चित्रकला की प्रचुर सामग्री मिलती है। हरिभद्र सूरिकृत 'समराइच्च्कहा' और 'उद्योतनसूरिकृत' कूवलयमालाकहा तथा सिद्धर्षि कृत 'उपमितिभव प्रपंच कथा' आदि उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। समराइच्चकहा में तत्कालीन चित्रकार 'भूषण एवं चित्तमति' के उल्लेख तथा उनके सृजन में इस क्षेत्र की कला परम्परा का परिचय मिलता है।[8]

हूणराज मिहिरकूल के पीछे जिन राजपूत वंशों ने अपने राज्य स्थापित किये थे उनमें गुहिलोत मुख्य हैं। चूंकि गुहिलबड़ा प्रतापी शासक था, इस वंश के राजपूतों ने जहाँ–जहाँ भी वे गये उन्होंने अपने को गुहिल वंशीय ही ही कहा। नैणसी व कर्नल टॉड ने इनकी अनेक शाखाओं का वर्णन किया है जिनमें मेवाड़, कल्याणपुर, बागड़, चाटसू आदि के गुहिलोत अधिक प्रसिद्ध है।[9] मेवाड़ के प्रारम्भिक गुहिलों में गुहा (566 ई.) तथा बापा (648ई.) के नाम ख्याति प्राप्त है। बापा के समय का प्रचलित सिक्का तत्कालीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक भावनाओं का द्योतक है। इसके उत्तराधिकारियों के बने देवालय और प्रशस्तियों उस युग की वास्तुकला तथा साहित्यिक उन्नति के पर्याप्त प्रमाण है।[10] इसी प्रकार 14वीं शताब्दी की सबसे बड़ी गुहिलों की उपलब्धि आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान की विशुद्ध भावनाओं से आंकी जा सकती है। जब अलाउद्दीन खिलजी ने 1303 ई. में चित्तौड़ पर आक्रमण किया तो गोरा बादल की वीरता और कूटनीति की सूझ ने राजपूती आन और शान की रक्षा की। आज भी चित्तौड़ के खण्डरों में गोरा–बादल के महल उनके साहस और शौर्य की कहानी के साक्षी हैं। आज गोरा–बादल और पद्मिनी नहीं है, परन्तु उनके आत्मबल और देश–सेवा के आदर्श जीवित हैं जो हमारी संस्कृति की अमूल्य धरोहर है।[11] इसके अनन्तर मेवाड़ का वह युग आता है। जिस चुनौती का पहला मुकाबला सांगा ने किया उसी चुनौती का पहला मुकाबला सांगा ने किया उसी चुनौती का सत्रावादी स्वरुप का सामना महाराणा प्रताप ने (1572–97 ई.) किया। जहाँ भारत के राजस्थान के अधिकांश नरेशों ने

अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी, प्रताप ने वैभव के प्रलोभन को ठुकरा कर 25 वर्ष के लम्बे समय तक राजनीतिक मंच पर अपने कर्त्तव्य परायणता के उत्तरदायित्व को बड़े साहस से निभाया। उसने अपनी निष्ठा और दृढ़ता से अपने सैनिकों को कर्त्तव्यारूढ, प्रजा को आषावादी और शत्रु को भयातुर रखा।

हल्दी घाटी के मैदान और कुंभलगढ़ के घेरे से

बच निकल कर एक महान शक्ति का जीवन पर्यन्त मुकाबला करने में उसे पूर्ण सफलता मिली थी। अतएव स्वतन्त्रता का महान स्तंभ होने के नाते, सद्कार्यों का समर्थक होने और नैतिक आचरण का पुजारी होने के कारण आज भी प्रताप का नाम असंख्य भारतीयों के लिए आषा का बादल है और ज्योति का स्तंभ है।[12]

कुंभा, सांगा व प्रताप के सिद्धान्तों को आदर्श मानकर महाराणा राजसिंह ने (1652–1680 ई.) युद्ध नीति और राज्य के हित के लिए संस्कृति के तत्वों के पोषण की नीति को प्राथमिकता दी। वह रण कुशल, साहसी, वीर तथा निर्भीक शासक थे। उसे कला के प्रति रुचि और साहित्य के प्रति निष्ठा थी। जितना निर्माण कार्य को एवं साहित्य को इसके समय में प्रश्रय मिला, कुंभा को छोड़कर, किसी अन्य शासक के समय में न मिला।[13] इस शैली के वीरता व संस्कृति की झलक निम्न पंक्तियों में –

वीतराग सी तापस कन्या सदृष
मैं उदयपुर शैली।
गुर्जर प्रदेश की किंचित संस्कृति
जैन चित्रों का साधारण प्रभाव
और भावों का अभिव्यंजन
अतिदीर्घकाय।[14]

अध्ययन के उद्देश्य

राजस्थानी चित्रकला में मेवाड़ चित्र शैली के शासकों का सांस्कृतिक इतिहास में वीर रस से परिपूर्ण चित्रों का अध्ययन अधूरा है। इस आवश्यकता को ध्यान में रखकर अध्ययन किया जा रहा है कि किस प्रकार शासकों ने अपने प्राणों की परवाह किये बिना अपने देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दी तथा वीरता और शौर्य का एक सुन्दर पाठ आने वाली पीढ़ियों का पढ़ाया। अतः कला का उद्देश्य ऐसे शासकों का शौर्य पराक्रम समाज के समक्ष प्रस्तुत कर उन्हें जागृत करना है।

निष्कर्ष

राजस्थान की मेवाड़ चित्र शैली में शासकों का सांस्कृतिक इतिहास उनके वीरता और शौर्य से परिपूर्ण चित्रों में हमें हमारी जो संस्कृति है उसके सारे पहलु नजर आते हैं। उनके देश के प्रति समर्पित भाव शौर्य और वीरता की अनेक घटनायें जो आधुनिक समाज से विस्मृत हो चुकी है। लेकिन इन कला चित्रों के माध्यम से उन पहलुओं को फिर से उजागर करने का एक छोटा सार्थक प्रयास है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. आर.के. वशिष्ठ : मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा पेज नं. 3, 12, 13, 14*
2. *डॉ. वन्दना जोशी : नाथद्वारा चित्र शैली पेज नं. 4, 9*
3. *डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला : किशनगढ़ चित्र शैली पेज नं. 6, 7, 8*
4. *दशरथ शर्मा, राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ. 41–43*
5. *रामप्रसाद चन्द्रा, पुरातत्व विभाग का मेमॉयर, सं. 31, 41, राधाकुमद मुकर्जी, हिन्दू सभ्यता, पृ. 74, 75, जॉन मार्षल, मोहनजोदड़ो, भाग 1 अध्याय 8, पृ. 110–112*
6. *त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 66–67*
7. *इन्द्रियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, भाग 1 पृ. 257, दशरथ शर्मा, राजस्थान यू. दि एजेज, भाग 1 पृ. 51*
8. *डॉ. आर.के. वशिष्ठ – मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा पेज नं. 3, 4, 5, 6, 7, 8*
9. *भावनगर इन्स. पृ. 74–75*
10. *क्लासिकल एज (विद्याभवन सिरीज) पृ. 160, बोम्बे ए. सो.ज. जि 22 पृ. 106–67, जी.एन. शर्मा राजस्थान का इतिहास, पृ. 52–59, 197–205*
11. *कुंभलगढ़ प्रशस्ति, श्लो 180 प्रतिशत फरिश्ता, पृ. 123 काम्प्रीहन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. 371*
12. *बदायुनी, भाग–2, पृ. 233, टॉड एनल्स पृ. 278, जी. एन. शर्मा, मेवाड़ एण्ड दि मुगल एम्परर्स, पृ. 119–121*
13. *राजप्रशस्ति, सर्ग 8, श्लो. 20–37, जी.एन. शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. 342–350*
14. *विजयवर्गीय, स्व. रामगोपाल, राजस्थान चित्रकला, मेवाड़ शैली*